

पाकिस्तान का सफरनामा-८

स्तंभ/अनन्तर/जनसत्ता/२१ मई, २००६

हड़प्पा काल और वैदिक मायाजाल

ओम थानवी

फ्रांसीसी विद्वान ज्यां हेनरी फाबरे ने दुरुस्त कहा है कि इतिहास सिर्फ दोगले शासकों के नाम दर्ज करता है; वह यह नहीं बता सकता कि गेहूं का उद्गम कहां हुआ था !

असल में गेहूं के उद्गम का पता महज जानकारी इकट्ठा करने से नहीं चलता। इसके लिए फावड़ा उठाना पड़ता है। सलीके से जमीन को खोदना पड़ता है। यह काम पुरातत्त्व करता है। शायद इसीलिए उसे इतिहास की रीढ़ कहा गया है। पुरातत्त्व इतिहास का प्रमाण है और प्राण भी। इतिहास अपनी विवशता में भले वंशावलियां बनाता हो, पुरातत्त्व गड़े मुर्दे उखाड़ कर अतीत में जीवन की खोज करता है। शायद इस तरह वह इतिहास में भी कुछ जान डालता है। मानव को उसके सभ्य होने के लंबे सिलसिले का पता न चलता अगर पुरातत्त्ववेत्ता अस्मीभूत गेहूं और भस्मीभूत जीव-जगत के अवशेष फिर से रोशनी के घेरे में लाकर न रखते।

मूअनजो-दड़ो के अजायबघर में वहीं पर बरामद हुआ गेहूं रखा है। कालांतर में गेहूं काला पड़ चुका है, लेकिन मूअनजो-दड़ो की खुदाई ने यह बखूबी साबित कर दिया था कि सिंधु सभ्यता यानी 'हड़प्पा संस्कृति' (पुरातत्त्व में किसी अभियान का नामकरण 'पहली खोज' पर होता है) खेतिहर थी। आगे की खुदाई में कालीबंगा में एक पूरा खेत मिला। पहले हम अपनी सभ्यता की उम्र पांच हजार साल बताते थे। बलूचिस्तान के मैदानी मेहरगढ़ में गेहूं ही नहीं, सिंधु घाटी सभ्यता के नौ हजार साल पुराने होने के प्रमाण मिले। भारत में लोथल और रंगपुर में परवर्ती सिंधु सभ्यता में चावल के प्रयोग के सूत्र भी मिले। अन्न ही नहीं, पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इस सभ्यता के ढेरों पहलुओं को बंटवारे के बाद पाकिस्तान में चन्हू-दड़ो, कोट डीजी, आमरी, बालाकोट और नौशेरो में तो भारत में धौलावीरा, राखीगढ़ी, बनवाली, सूकोटड़ा, रोजड़ी आदि जगहों पर सार्थक खुदाई कर उजागर किया है।

लेकिन मूअनजो-दड़ो में इस बात के स्मरण से कि अब यहां कभी खुदाई नहीं होगी, मेरा दिल कुछ बैठ-सा गया। दो-तिहाई मूअनजो-दड़ो अभी जर्मीदोज है। और उसके साथ आदि इतिहास के रहस्यों की दर्जनों परतों के साथ दो बड़ी गुत्थियां दफन हैं।

दिल्ली से कराची खाना होने से पहले मैंने इस सिलसिले में जो किताबें पढ़ीं, उनमें कोई भी इस गुत्थी पर फैसलाकुन रोशनी नहीं डालती कि मिस्र और मेसोपोटामिया (इराक) से बड़ी- और शायद पुरानी भी- सिंधु घाटी सभ्यता खत्म कैसे हो गई। इतिहास के ब्योरों में मूअनजो-दड़ो और हड़प्पा जैसे विराट नगरों का सहसा लोप हो जाता है। नई वैदिक संस्कृति आ जाती है। हड़प्पा सभ्यता की कुछ परंपरा उसके बीच उभरी रहती है। इस विषय पर जो किताबें पाकिस्तान में मिलीं, वे भी चर्चित आशंकाओं की फेहरिस्त ही पेश करती थीं। मसलन, शायद सिंधु सभ्यता किसी भूकंप की वजह से या नदी में आई बाढ़ से तबाह हुई।

पर क्या सिंधु की बाढ़ सिंध, पंजाब और गुजरात पर एक साथ मार कर सकती है? यह भी कहा जाता है कि बाढ़ नहीं आई, सूखा पड़ा होगा। प्राकृतिक कारणों से उलट अमेरिकी पुरातत्त्ववेत्ता फेयस्सेरविस की यह कल्पना बहुत चर्चा में रही है कि सिंधुवासियों ने भूमि का दोहन ज्यादा किया, पशुओं की बेइंतहा चराई की और अंधाधुंध जंगल काटे। इस कयास को इरफान हबीब ने एक हिसाब लगाकर नकारा है। उनके मुताबिक सिंधु आबादी का घनत्व एक वर्ग किलोमीटर में छह लोगों से ज्यादा नहीं था। इतनी कम आबादी प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल बरबादी की हद तक कैसे कर सकती है?

यह भी सोचा जाता है कि सिंधु सभ्यता अगर कोई साम्राज्य थी तो उसकी सत्ता का संतुलन या अनुशासन इतना चरमरा गया होगा कि समुदाय बिखर गए। इसी के साथ एक अंदाजा यह है कि दो हजार ईस्वी पूर्व में मेसोपोटामिया से व्यापार टंडा पड़ गया और नतीजतन सिंधु घाटी की अर्थव्यवस्था चौपट हो गई। लेकिन इसके प्रमाण नहीं हैं कि विदेशी आयात-निर्यात बहुत बड़े पैमाने पर था और समूची घाटी उसी पर निर्भर थी। नया शोध फिर प्राकृतिक कारणों की तरफ चला आया है। ताजा भूगर्भ अध्ययन से पता चला है कि भूमि का उठान यहां होता रहता था। उस वजह से या कुछ समुद्र का स्तर ऊंचा उठने से सिंधु का प्रवाह धीमा हो गया। उसने सिंचाई में गाद भर दी और खेतों में क्षार भी बढ़ गया। मरुभूमि में सिर्फ सिंधु की उपज पर निर्भर वह सभ्यता इस तरह कहीं की नहीं रही।

दूसरी गुत्थी- जो एक स्तर पर पहली से जुड़ी है- वैदिक संस्कृति और सिंधु सभ्यता के रिश्ते की है। क्या दोनों में कोई सीधा संबंध है? क्या आर्य 'आक्रांता' थे जिन्होंने हड़प्पा संस्कृति चौपट कर दी? या सिंधुवासी द्रविड़ थे जिन्हें आर्यों ने दक्षिण में ढकेल दिया? सिंधु घाटी के उजड़ने और वैदिक संस्कृति के स्थापित होने में कितना फासला है? या नव-स्थापित आर्य संस्कृति ने लुप्त हड़प्पा संस्कृति के बचे तत्वों को संक्रमण की सहज प्रक्रिया में धीमे-धीमे आत्मसात कर लिया? या धीमे-धीमे क्षय हो रही हड़प्पा सभ्यता ने वैदिक संस्कृति को आत्मसात कर लिया और जो नहीं कर सके वे दूर चले गए? शायद ऐसे ढेर सवालों के मद्देनजर ही रोमिला थापर ने इस मुद्दे को भारतीय इतिहास की सबसे पेचीदा समस्या करार दिया है।

समस्या पेचीदा है और कुछ खतरनाक भी। खतरनाक इस मायने में कि हमारे यहां हिंदुत्ववादी मानस कुछ समय से हिंदू धर्म की स्थापना करने वाली वैदिक संस्कृति को जबरन हड़प्पा युग में स्थापित करने की कोशिश में है। वे इस विवेचन से- जो अभी अपुष्ट है- परेशान हैं कि आर्य बाहर से आए। उधर जॉन मार्शल से लेकर इरफान हबीब तक- यानी पुरातत्त्ववेत्ता ही नहीं आधुनिक इतिहासकार भी- सिंधु सभ्यता का उद्गम मोटे तौर पर देशज मानते हैं। ऐसे में वैदिक यानी हिंदू संस्कृति को देशज तभी ठहराया जा सकता है जब उसे सिंधु सभ्यता से जोड़ा जाए। मुस्लिम और ईसाई समाज को बाहर का बता कर आंखें दिखाने वालों के लिए शायद यह और जरूरी है। लेकिन उनकी मुश्किलें बढ़ गई हैं क्योंकि ऋग्वेद को, नई पुरातात्विक खोज के साथ, नौ हजार साल पीछे नहीं ले जाया जा सकता। सिंधु सभ्यता का आरंभिक चरण ७००० ई.पू. माना जाता है। उसका प्रौढ़ युग २६०० ई.पू. से १९०० ई.पू. तक रहा। जबकि वेदों का रचना-काल १५०० ई.पू. के आसपास माना जाता है।

फिर ऋग्वेद की भाषा पुरानी संस्कृत है। हड़प्पा-लिपि संस्कृत होती तो अब तक दूध और पानी आप अलग हो गए होते। हकीकत यह है कि अनेक विद्वान ऋग्वेद और जरदुशती धर्मग्रंथ जेंद-अवेस्ता की भाषा में साफ साम्य देखते हैं। ज्यादातर पुरातत्त्ववेत्ता, इतिहासकार और नृतत्वशास्त्री इस बात पर एक-मत हैं कि घोड़े का प्रयोग भारत में वैदिक युग में हुआ। 'वैदिक पीपल' के लेखक राजेश कोछड़ का तो मानना है कि वैदिक जन घोड़े से आविष्ट थे (ख्याल करें अश्वरथ, अश्वमेध, अश्वबलि)। जबकि अकेले मूअनजो-दड़ो की खुदाई में हासिल पचास हजार चीजों में एक पर भी घोड़ा अंकित नहीं है। न कोई और प्रमाण सुराग देता है कि सिंधु सभ्यता ने घोड़े को पालतू बना लिया था। वरना कोई वजह नहीं कि वैदिक समाज में समृद्धि और शक्ति का प्रतीक माना जाने वाला घोड़ा मूअनजो दड़ो-हड़प्पा की पशुओं की छवि वाली बेशुमार मुहरों में एक पर मौजूद न हो। वेदों में कहीं पर हड़प्पाई महानगर संस्कृति का ब्योरा भी नहीं मिलता।

पिछली दफा, जब देश में भारतीय जनता पार्टी सत्ता में शामिल थी, सिंधु सभ्यता का नाम ही बदल डालने की कोशिशें चल पड़ीं। बाकायदा एनसीईआरटी की पाठ्य-पुस्तकों में इसे 'सिंधु-सरस्वती सभ्यता' नाम दे दिया गया। सरस्वती वेदों में जरूर है, पर उसका भौतिक और ऐतिहासिक पक्ष अभी खोज के दायरे में है। दूसरी तरफ, मान्य तथ्य है कि सिंधु सभ्यता सरस्वती घाटी से यानी पूरब से पश्चिम (बलूचिस्तान) की तरफ नहीं गई, बल्कि पश्चिम से पूरब की तरफ आई। मैंने लगे हाथ एनसीईआरटी की इतिहास की नई पाठ्य-पुस्तकें भी देखीं। उनमें इस मामले में संतुलित और विवादहीन नजरिया अपनाया गया है।

अगर देशज-विदेशज की भावुकता के जंजाल में कोई न पड़े तो वैदिक संस्कृति और सिंधु सभ्यता, दोनों, भारतीय आदि इतिहास की शान हैं। विडंबना यही है कि वेदों को साहित्य से हड़प्पीय इतिहास के पाले में धकेला जाता है, जबकि इसके समर्थन के लिए न दस्तावेज हैं न पुरातात्विक प्रमाण। साहित्य भी श्रुति में है; उसकी अपनी लिपि नहीं है। जबकि सिंधु सभ्यता में पुरातत्त्व के असंख्य प्रमाण हैं। अपनी लिपि भी है। पर 'साहित्य' नहीं है, जो हड़प्पा संस्कृति पर रोशनी डाल सके!

इस दुविधा की स्थिति ने कइयों को दिग्भ्रमित किया है। इसकी सबसे अच्छी मिसाल हिंदी लेखक-आलोचक भगवान सिंह हैं। हड़प्पा सभ्यता पर उन्होंने छह सौ पेज की किताब लिखी है। हिंदी में इससे पहले पुरातत्त्व शास्त्री गोवर्द्धनराय शर्मा और इतिहासकार रामशरण शर्मा की किताबें ही चर्चा में थीं, हालांकि वे सिंधु सभ्यता पर केंद्रित नहीं थीं। भगवान सिंह की मुश्किल यह है कि उनके विवेचन का तरीका वैज्ञानिक नहीं है। सिंधु सभ्यता पर उनका वैदिक आग्रह निरा दुराग्रह है। निस्संदेह साहित्य के रूप में वेद अद्वितीय हैं। पर वे इतिहास नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि साहित्य इतिहास की तरफ नहीं ले जा सकता। मैंने हाल में एथेंस की यात्रा में जाना कि किस तरह माइसीनिया की सफल खुदाई वास्तव में होमर के काव्य से सूत्र लेकर शुरू हुई थी। यानी साहित्य या मिथक के 'इतिहास चित्रण' को पुरातत्त्व का साक्ष्य चाहिए।

भगवान सिंह ने पुरातत्त्व को साहित्य के प्रमाण से पुष्ट ठहराने का जतन किया है। यह साहित्य का ही नहीं, पुरातत्त्व और इतिहास का भी अहित है। शायद हमारे तर्कशास्त्र का भी। 'अकाट्य प्रमाणों' (जाहिर है वैदिक संदर्भ वाले) के आधार पर उनकी कुछ विचित्र स्थापनाएं देखिए: हड़प्पा सभ्यता ही वैदिक सभ्यता है; वैदिक सभ्यता का विकास भारत में हुआ; यहां से वह बाहर गई; हड़प्पा सभ्यता में घोड़ा था, घोड़े के मामले में वैदिक जन और हड़प्पावासियों में कोई भिन्नता नहीं है; वहां लोहा भी था; जिसे परवर्ती हड़प्पा का दौर कहा जा सकता है उसका अध्ययन यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और ब्राह्मणों, कल्पसूत्रों, धर्मशास्त्रों, पुराणों आदि के संदर्भ में ही किया जा सकता है... आदि-इत्यादि।

सिंधु सभ्यता की गुत्थियों में सबसे अनबूझ गुत्थी उसकी लिपि है। हड़प्पा शोध परियोजना के निदेशक रिचर्ड मीडो ने हाल में दावा किया है कि हड़प्पा में मृद्भाण्डों पर साढ़े पांच हजार साल पुरानी इबास्त मिलने के बाद सिंधु लिपि दुनिया की सबसे पुरानी लिपि हो गई है। अब तक मिस्त्र की लिपि सबसे पुरानी मानी जाती थी। मगर सिंधु लिपि को कभी कोई पढ़ने में कामयाब भी तो हो! यह लिपि पढ़ ली जाए तो बाकी कई गुत्थियां आप सुलझ जाएंगी।

जो हो, लिपि का रहस्य सिंधु सभ्यता की खोज के पहले रोज जहां था, आज भी वहीं है। १८७२-७३ में भारतीय पुरातत्त्व विभाग के पहले महानिदेशक अलेग्जेंडर कनिंगम के सर्वे के थोड़े ही समय बाद हड़प्पा में पहली ठप्पेदार मुहर बरामद हुई थी। तब से कोई तीन हजार चित्रलिखित अभिलेख (ज्यादातर मुहरें) सिंधु सभ्यता के विभिन्न शहरों की खुदाई में मिल चुके हैं। इनमें पचासी फीसद अभिलेख केवल मूअनजो-दड़ो और हड़प्पा से मिले हैं। अंकित इबारतों में कुल ४१९ चिह्नों का प्रयोग हुआ है। बार-बार प्रयोग होने वाले चिह्नों की तादाद दो सौ से ज्यादा नहीं है। सबसे लंबी एकल इबास्त तीन पंक्तियों में सत्रह चिह्नों की है। विद्वान इस पर कमोबेश सहमत हैं कि सिंधु लिपि बाएं से दाईं तरफ लिखी जाती थी। लेकिन दूसरी पंक्ति बाएं से शुरू होती थी। हालांकि ज्यादातर इबारतें एक पंक्ति में हैं, वे भी औसतन पांच चिह्नों में सीमित।

ग्रेगरी पोसेल ने उन चुनिंदा दावों (चालीस के ऊपर) का एक अध्ययन किया है जिनमें लिपि को पढ़ने के गंभीर प्रयास किए गए। उनका मानना है कि एक भी प्रयास- इरावतन् महादेवन और आस्को पारपोला सहित- जीआर हंटर के १९२९ के स्तर को नहीं छू पाया है। मुश्किल शायद यह है कि सिंधु लिपि के लंबे आलेख या शिलालेख अब तक नहीं मिले हैं। शायद वे छाल-पत्तों या कपड़े वगैरह पर रहे हों और नष्ट हो गए हों। कुछ विद्वानों को तो यह शक भी होने लगा है कि क्या सिंधु लिपि सचमुच कोई भाषा थी! या वह नाम या चीजों का परिचय देने वाली चित्र-लिपि ही थी।

इस घटाटोप में एनएस राजाराम और नटवर झा जैसे बाजीगर भी हो गए हैं जिन्होंने लिपि 'पढ़ने' के साथ टूटी मुहरों को कंप्यूटर से 'दुरुस्त' कर उन पर घोड़े तक बना दिए। तीन विदेशी विशेषज्ञों ने उनकी कारीगरी की कलाई खोली है। एक उत्साही बुजुर्ग जर्मन विद्वान एगबर्ट रिख्तर-उषनस् ने सिंधु घाटी की मुहरों पर कोई न कोई वैदिक ऋचा पढ़ ली है। इतना ही नहीं, अपनी किताब के अंत में उन्होंने हड़प्पा लिपि के हर अक्षरांकन (चिह्न) का अर्थ खोलते हुए सिंधु-शब्दकोश भी दे दिया है!

सिंधु-लिपि को जल्दबाजी में 'पढ़' कर कुछ अतार्किक निष्कर्षों तक पहुंच जाने की भूल गंभीर अध्येताओं ने भी कम नहीं की है। कुछ विद्वान लिपि के निहितार्थ की तरफ भी इशारा करते हैं। एस. रंगनाथ राव जैसे जाने-माने पुरातत्त्वी तक इस तरह की स्थापना कर जाते हैं कि सिंधु अभिलेखों में "पाए जाने वाले नाम" उन्हें "वैदिक ऋषियों और अन्य द्रष्टाओं का स्मरण दिलाते हैं"।

प्रसंगवश, सिंधु-लिपि पढ़ने के सिलसिले में पाकिस्तान में कोई उल्लेखनीय प्रयास नहीं हुआ है।

